हम अंतरिक्ष के बारे में कैसे जानते हैं?

लेखक: इसाक असिमोव अनुवादक: स्मृति महाजन

१. उड़ान

एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए मानव अनेक प्रकार कि क्रियाएं कर सकता है: चलना, भागना, उछलना, कूदना, रेंगना, तैरना या फ़िर बैलगाड़ी की सवारी करना ऐसी ही क्रियाओं के कुछ रूप हैं. किन्तु इन सभी क्रियाओं को करते समय प्रायः हमारा शरीर धरती का स्पर्श करता ही है. यदि कोई व्यक्ति कूद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता भी है, तो भूतल से ऊपर उसका शरीर क्षण भर के लिए ही वायु में होता है, और फ़िर वह वापिस धरती पर आ जाता है.

किन्तु अन्य जीव–जंतुओं के लिए यह सत्य नहीं है. पक्षी, चमगादड़ व अनेक प्रकार के कीड़े उड़ सकते हैं. उनके पंख हवा में फडफडाते हैं, और इस प्रकार, हवा में उनका संतुलन उसी प्रकार बना रहता है जैसे धरती पर हमारा .

उड़ान में एक अद्भुत स्वंतत्रता का आभास होता है. न पत्थरीली चट्टानों को पार करने की आवश्यकता, न नदियों को, और न ही पैरों को धूल में सनने की. बस जिधर मन करे खुली हवा में उड़ चलो. मुझे विश्वास है कि ऐसा समय अवश्य आता होगा, जब तुम्हारा मन करता होगा कि तुम भी बाहें फैला कर पक्षी कि भांति आकाश में उड़ सको.

पुरातनकाल में भी मानव उड़ने के सपने देखता था, और इसीलिए ऐसी कहानियाँ गड़ता था जिनमें उड़ना संभव था. वो जादुई कालीन कि कहानियाँ सुनता–सुनाता था, जो सही मंत्र बोलने पर ही उड़ता था. वो पंखों वाले घोड़े कि कहानियाँ कहता था, जो सवार को वायुमार्ग से एक स्थान से दोसरे स्थान पर जा सकता था.

उड़ान की सबसे प्रसिद्द प्राचीन कथा यूनानी निवासियों २५०० वर्ष पूर्व लिखी गयी. वो एक चतुर आविष्कारक देदौलुस की कथा है, जिसे उसके पुत्र इकारस सहित क्रेट के निकट एक द्वीप पर बंधी बना कर रखा गया था. देदौलुस के पास कोई नाव नहीं थी, और इसलिए द्वीप से भागे के लिए उसने अपने व अपने पुत्र के लिए पंखों का निर्माण किया. काठ के एक हलके ढाँचे को मोम से ढक कर उसने उस पर पक्षियों के अनेक पंख चपका दिए. काठ के इन पंखों की सहायता से वो आकाश में उड़ पाया, व अपने पुत्र इकारस सहित द्वीप से भागने में समर्थ हुआ. उड़ते–उड़ते देदौलुस ८०५ कि.मी. दूर सिसिली नामक शहर जा पहुंचा, किन्तु उड़ान के रोमांच से प्रभावित इकारस आकाश में बहुत अधिक ऊंचाई पर चला गया. सूर्या कि गर्मी के कारण उसके पंखों पर लगा मोम पिघल गया, जिसके कारण पक्षियों के पंख काठ से उखड गए, और धरती पर गिरने से इकारस कि मृत्यु हो गयी.

अवश्य ही यह कथा सत्य पर आधारित नहीं है. केवल पंख होने से ही उड़ना संभव नहीं है, फिर चाहे उन पर पक्षियों के पर ही क्यूँ न लगे हों. सबसे महत्वपूर्ण हैं वो मांसपेशियां जिनके द्वारा पंखों को फडफडा कर शरीर को हवा में ऊपर उठाया जा सकता है. प्राणी जितना हारी होगा, उड़ने के लिए उसे उतनी ही बलशाली मांसपेशियों की आवश्यकता होगी. प्राणियों में जिस प्रकार कि मांसपेशियां पायी जाती हैं, उनके अनुसार उड़ने वाला कोई भी जीव २२ कि.ग्रा. से अधिक भारी नहीं हो सकता.

कोई मनुष्य अपनी मांसपेशियों से पंख फडफडा कर भूतल से अपने शरीर को ऊपर नहीं उठा सकता, और एक घोड़े के लिए तो यह करना और भी मुश्किल है.

किन्तु कोई ऐसे रथ का निर्माण अवश्य कर सकता है जिसमें बहुत से पक्षियों को जोता जा सके. इस प्रकार प्रत्येक पक्षी अपने वज़न की तुलना में थोडा सा ही अतिरिक्त भार उठाएगा. १६३० में एक अँगरेज़ लेखक, फ्रांसिस गोडविन ने 'द मैन इन द मून' (चन्द्रमा में इंसान) नामक एक कहानी लिखी थी. ये एक अन्वेषक की कहानी है जिसने एक ऐसे रथ का निर्माण किया जिसमें अनेक हंस जुते थे. ये हंस उस अन्वेषक सहित रथ को आकाश में इतना ऊंचा उड़ा ले गए की वो चाँद पर पहुँच गया. किन्तु वास्तव में किसी ने कभी भी अनेक पक्षियों को रथ में जोतने की चेष्टा नहीं करी.

गोडविन के कथा लिखने के तकरीबन १५० वर्ष पश्चात मानव ने धरती की सतह से ऊपर उड़ने का साधन खोज निकाला. किन्तु ये न तो जादू था, न पंखों के सामान बाहें फैला कर उड़ने का प्रयास. ये था हवा में तैरने की सक्षमता.

एक फ्रांसीसी नागरिक जोसेफ मोन्त्गोल्फ़िएर, व उसके छोटे भाई ने देखा की आग से निकलता धूआं ऊपर उठता है, व हलकी चीज़ों को भी अपने साथ ऊपर उठाने में सक्षम है. उन्हें ये आभास हुआ कि ठंडी हवा के मुकाबले, गर्म हवा हलकी (अर्थात कम सघन) होती है. इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस प्रकार पानी कि सतह पर लकड़ी का टुकडा तैर सकता है, ठंडी हवा में गर्म हवा तैर कर ऊपर उठ सकती है.

५ जून १७८३ को अपने शहर अन्नोंय (फ्रांस) में दोनों भाइयों ने एक विशालकाय थैले में गर्म हवा भरी. ये गर्म हवा हलकी होने के कारण थैले सहित भूतल से २.४ कि.मी. ऊपर १० मिनट तक तैरती रही. इतनी देर में ठंडी हो जाने के कारण, ये सर्वप्रथम गुब्बारा धरती पर लौट आया.

नवम्बर में दोनों भाइयों ने गर्म हवा के इस गुब्बारे को पैरिस में प्रदर्शित किया. ३००,००० लोगों कि भीड़ ने गर्म हवा के गुब्बारे को धरती से ऊपर उठते हुए देखा. इस बार ये ९.६ कि.मी. दूर तक गया.

उसी दौरान एक बहुत हलकी गैस, हाइड्रोजन कि खोज की गयी थी. हाइड्रोजन साधारण हवा से कम सघन होती है. वास्तव में यह सबसे कम सघन गैस है. फ्रांसिसी वैज्ञानिक, जक्कुएस चार्ल्स ने परामर्श दिया कि गुब्बारे को हाइड्रोजन से भरा जाए.

ऐसा करने पर, हाइड्रोजन भरा गुब्बारा, साथ में जुडी टोकरी में बैठे लोगों सहित धरती से ऊपर, आकाश में उड़ने में सफल रहा. अठाराहंवी सदी के आरम्भ में अनेक लोगों ने गुब्बारे की उड़ान का आनंद लिया. धरती कि सतह से कई कि.मी. ऊपर उड़ पाना मानवीय इतिहास में पहली बार संभव हो पाया.

किन्तु गुब्बारे केवल वायु के प्रवाहानुसार ही आकाश में तैर सकते हैं. अब मान लो गुब्बारे से जुडी टोकरी में तुम एक ऐसा इंजन लगा दो जो नोदक को हिला सके. अब तेज़ी से घूमने वाला ये नोदक हवा में गुब्बारे को किसी भी दिशा में हांकने में उसी प्रकार सक्षम है, जिस प्रकार समुद्री जहाज़ पर लगा नोदक उसे पानी में चलाने में सहायता करता है. नोदक–चलित ये गुब्बारा परिचालानशील होगा, अर्थात उसे इच्छा अनुसार चलाया जा सकेगा.

सर्वप्रथम परिचालन यन्त्र जर्मन नागरिक काउंट फेर्डीनेंड वोन ज़ेप्लिन ने बनाया था. उन्होंने गुब्बारे को अलमुनियम से बने एक लम्बे सिगारनुमा ढाँचे में दाल दिया, जिससे कि वो ठंडी हवा कि सतह को आसानी से काट सके. २ जुलाई १९०० में पहला चलायमान गुब्बर्रा हवा में उड़ा. अब लोग मनचाही दिशा में उड़ कर आ–जा सकते थे.

अगले ४० वर्षों तक इन परिचालन उड़नखटोलों को बड़ा व बेहतर बनाने कि चेष्टा जारी रही, किन्तु इनमें भरी जाने वाली हाइड्रोजन खतरनाक थी. हाइड्रोजन गैस ज्वलनशील होती है जिसके कारण गुब्बर्रा फट सकता है. किन्तु इसके स्थान पर हीलियम नामक एक अन्य हलकी गैस का प्रयोग किया जा सकता है. ये हाइड्रोजन कि भांति तो ठंडी हवा में नहीं तैरती, किन्तु कभी भी आग नहीं पकड़ सकती.

परन्तु न तो इन परिचालानशील गुब्बारों कि चाल तेज़ थी, व न ही ये शक्तिशाली थे. तेज़ हवा व तूफ़ान में ये बड़ी आसानी से टूट जाते थे.

कुछ वस्तुएं अत्यंत सघन होते हुए भी हवा में तैर सकती हैं. हवा से अधिक सघन होते हुए भी अपने चौड़े ताल–क्षेत्रफल के कारण पतंग हवा में तैर सकती है. वो हवा के हलके झोंके को भी महसूस कर हवा में ठहर सकती है. क्या ऐसी पतंग बनाना संभव है जो अपने साथ मनुष्य को उड़ा ले जाए?

हलकी काठ से नौकानुमा वस्तु बनायी गयी, व हवा में बेहतर संतुलन बनाये रखने हेतु उसमें काठ के पंख जोड़ दिए गए. ऊंचाई से छोड़े जाने पर यह नौकानुमा ढांचा कुछ देर तक हवा में तैर सकता था. १८९० के दशक में ये ग्लाईडर काफी प्रचलित हुए.

गुब्बारों कि भांति प्राथमिक ग्लाईडर भी वायुवेग कि दिशा में ही तैर सकते थे. किन्तु क्या वोन ज़ेप्लिन द्वारा गुब्बारे वाले उड़नखटोले में लगाये गए नोदक जैसा इंजन–चालित नोदक

ग्लाईडर में भी लगाया जा सकता था ?
ओहायो के डेटोन नामक शहर में बसे दो अमरीकी साइकिल निर्माताओं, ओर्विल राइट व उनके भाई विल्बुर ने ऐसा ही करने कि ठानी. उन्होंने ऐसा ग्लाईडर बाया जो वायुवेग का पूर्ण लाभ उठा सके, व यथासंभव हलकी मोटरों का भी निर्माण किया. १७ दिसंबर १९०३ को, अमरीका के उत्तरी कैरोलिना स्थित किट्टी हॉक में इंजन चलित ग्लाईडर में ओर्विल राईट ने हवा में उड़न भरी. ये था सर्वप्रथम हवाईजहाज़. ये हवा में तकरीबन एक मिनट रहा जिस दौरान इसने २६० मी. कि दूरी तय करी, किन्तु इसने यह दिखा दिया कि ऐसा करना संभव है.
तत्पश्चात हवाईजहाजों को बड़ा व बेहतर बनाने कि चेष्ठा निरंतर जारी रही, जिससे कि वे तीव्रगति से चलो सकें. हवाईजहाज़ जितना तेज़ चलता है, वायु उसके पंखों को उतना ही ऊंचा उठा सकती है, व हवाईजहाज़ पर उतना ही अधिक भार लादा जा सकता है. १९०८ में ओर्विल राईट एक घंटे तक हवा में रहे. १९०९ में एक हवाईजहाज़ ने इंगलिश चैनल पार किया. प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हवाई युद्ध हुआ. १९२७ में अमरीकी हवाईजहाज चालक चार्ल्स ए. लिंडबर्ग ने न्यूयार्क से पैरिस तक उड़ान भर कर अतलांतिक महासागर को पर किया. ऐसा करने में उन्हें ३३ घंटे लगे.
आधुनिक हवाईजहाज़ सैंकड़ों लोगों को एक साथ ढो सकते हैं. कुछ हवाईजहाज़ तो १,६०० कि.मी. प्रति घंटे से भी अधिक गति से उड़ सकते हैं व अतलांतिक महासागर को केवल ३ घंटे में पर करने में सक्षम हैं.
साधारण परिचालन यंत्रों कि अपेक्षा अब हवाईजहाजों का ही प्रयोग किया जाता है, किन्तु वायुमंडल कि ऊपरी सतहों के अध्ययन के लिए आज भी साधारण गुब्बारों का प्रयोग किया जाता है. हलके, महीन प्लास्टिक से बने ये विशेष गुब्बारे धरती की सतह से ५० कि.मी. तक ऊपर जा सकते हैं.

2. शून्य

अब जब हमारे पास गुब्बारे और हवाईजहाज़ हैं जो कि लोगों को आकाश में कई कि.मी. ऊपर ले जा सकते हैं, तो हम गोडविन के कथा नायक की तरह ऊंचे उड़ते–उड़ते चन्द्रमा तक क्यूँ नहीं पहुँचते ?
परेशानी ये है कि गुब्बारे व साधारण हवाईजहाज़ हवा पर आश्रित हैं. गुब्बारे हवा में तैरते हैं. वेगवान हवाईजहाज़ को हवा आकाश में संतुलित करती है. और फिर हवाईजहाजों को हवा में पाई जाने वाली आक्सीजन नामक गैस की भी आवश्यकता होती है, जिसे इंधन में मिला कर उनके इंजन काम करते हैं.
तो फिर प्रश्न ये है कि हवा धरती की सतह से कितनी ऊंचाई तक पाई जाती है?
प्राचीनकाल में ये मान्यता थी कि हवा का प्रसार अनिश्चित ऊंचाई तक है, चन्द्रमा तक है व आकाश में दिखने वाले सभी ग्रहों आदि तक है. चन्द्रमा तक पहुँचने वाली कहानियों के लेखक मानते थे कि धरती व चन्द्रमा के बीच फैले हवा के महासागर को पार करना उतना ही सरल है जितना की यूरोप से अमरीका के बीच फैले पानी के महासागर को.
यद्यपि, गोडविन के पुस्तक लिखने के कुछ वर्षों के बाद ही नयी खोजों ने हवा के प्रति हमारा रवैया बदल दिया.
१६४३ में एक इतालवी वैज्ञानिक, इवंगालिसत तोरिचेली ने, १२० से.मी. लम्बी शीशे कि एक ऐसी नली में पारा भरा जिसका मुख एक और से बंद था. तत्पश्चात उस नली के खुले मुख को बंद करके उन्होंने पारे से भरे एक प्याले में उलट कर उसका मुख खोल दिया.
तुम सोच रहे होगे कि नली में से सारा पारा बहार आ गया होगा, किन्तु केवल उसका कुछ अंश ही बहार आया. प्याले में रखे पारे कि सतह पर पड़ने वाले हवा के दबाव के कारण नली में पारा ७६ से.मी. तक चढ़ा रहा. तोरिचेली ने प्रथम बैरोमीटर का निर्माण कर दिया था, और इससे हवा के दबाव में होने वाले परिवर्तन को मापा जा सकता था.
अब हवा के २.५ से.मी. चौड़े व निश्चित मोटाई के प्रसार की कल्पना करो. तब हवा के इस प्रसार की ऊंचाई कितनी हो जिससे कि उसका वज़न २.५ से.मी. चौड़े व ७६ से.मी. ऊंचे पारे के प्रसार जितना हो जाए? पारे की किसी निश्चित राशि का भार हवा कि उतनी ही राशि कि तुलना में १०,५०० गुना अधिक होता है. तो सामान वज़न के लिए हवा के प्रसार कि ऊंचाई पारे कि तुलना में १०,५०० गुना अधिक होनी चाहिए.
अर्थात, हवा, या वायुमंडल निश्चय ही ८ कि.मी. की ऊंचाई तक फैला होना चाहिए.
वास्तव में वायुमंडल इससे अधिक ऊंचा है. धरती के निकट स्थित वायुमंडल की निचली सतहों पर, ऊपरी सतहों के वज़न का भार निरंतर पड़ता रहता है. इसी कारण भूतल के निकट की हवा अधिक ऊंचाई पर पायी जाने वाली हवा की तुलना में अधिक सघन होती है.
वास्तव में तुम जितनी ऊंचाई पर जाओ, हवा उतनी ही कम सघन होगी. हवा जितनी कम होगी उतने ही अधिक उसका प्रसार क्षेत्र होगा. इसका अर्थ ये हुआ कि वायुमंडल भूतल से ८ कि.मी. से भी अधिक दूर तक फैला हुआ है. धरती की सतह से १६ कि.मी. तक की ऊंचाई पर भी कुछ वायु है.
किन्तु हवा जितनी कम सघन होती जाती है उसकी उपयोगिता उतनी ही कम होती जाती है. भूतल से १० कि.मी. कि ऊंचाई पर पायी जाने वाली हवा सांस लेने योग्य नहीं रहती. ५० कि.मी. ऊपर तो उसमें न गुब्बारा तैर सकता है न हवाईजहाज़ उड़ सकता है. १६० कि.मी. ऊपर हवा का पता लगाना ही असंभव हो जाता है.
तथापि चन्द्रमा तक पहुँचने की बात करें तो १६० कि.मी. की ऊंचाई कि तो बात ही क्या है. चन्द्रमा धरती से १९५,००० कि.मी. दूर है. अर्थात लगभग उस पूरे रास्ते में बिलकुल हवा नहीं है. ये शून्य (वक्यूम) है, लातिन में जिसका अर्थ होता है 'खाली',
अंतरिक्ष में शून्य लगभग सभी जगह पर है. तुम्हें ग्रहों के निकट हवा मिलेगी, किन्तु कभी–कभी वहां भी नहीं. उदाहरणतः, चन्द्रमा पर हवा नहीं है. चन्द्रमा पर शून्य का प्रसार उसकी सतह तक है.
संभवतः वायुमंडल से परे शून्य को हम 'अंतरिक्ष' कह सकते हैं.
अतः हम कह सकते हैं कि तोरिचेली ने अंतरिक्ष की खोज की थी.
वो प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने दिखाया की हवा का प्रसार अनिश्चित ऊंचाई तक नहीं है, अपितु वह भूतल के निकट ही पायी जाती है.
इसका अर्थ ये हुआ कि गोडविन के कथा नायक कि भांति चन्द्रमा तक की यात्रा कोई नहीं कर सकता. शून्य में सांस भी नहीं ले सकते. लोग भी नहीं कोई गुब्बारा शून्य में तैर नहीं सकता. कोई हवाईजहाज़ शून्य में उड़ नहीं सकता.
गुब्बारों, वायुयानों, ग्लाइडरओं व हवाईजहाजों में उड़ान भरने के बावजूद लोग भूतल से चाँद कि.मी. से ऊपर नहीं उठ सकते थे.
तो फिर मानव चन्द्रमा तक कैसे पहुंचेगा? क्या शून्य मेंन चलने वाली कोई वस्तु बनाना संभव है?
एक उपाय है किसी वस्तु को फेंकना. यदि तुम हवा में गेंद उछालते हो, तो तुम्हारी मांसपेशियों द्वारा धकेले जाने के कारण वो ऊपर उठती है. उससे हवा का कोई लेना–देना नहीं है. वास्तव में हवा तो उस गेंद कि गतिरोधक बनकर उसे धीमा कर देती है.
निश्चय ही गेंद बहुत अधिक ऊपर नहीं जाती. धरती का गुरुत्वाकर्षण उसे निरंतर अपनी और आकर्षित करके उसकी गति को धीमा करता रहता है. अंततः उसकी गति शून्य मात्र ही रह जाती है. तत्पश्चात क्षण भर के लिए गेंद हवा में रुक जाती है व फिर वह नीचे कि और गिरने लगती है.
तुम जितनी जोर से गेंद को ऊपर फेंकोगे शुरू में वो उतनी ही तीव्र गति से ऊपर जाएगी. वो जितनी तीव्रता से ऊपर जाएगी उसे नीचे खींचने व धीरे करने में गुरुत्वाकर्षण को उतनी ही अधिक देर लगेगी, व नीचे गिरने से पहले वह गेंद उतनी ही अधिक ऊंचाई तक जा पायेगी.
अब मान लो तुम गेंद को अधिक तेज़ी से बार–बार ऊपर फेंको व नीचे गिरने से पहले उसे लगातार और अधिक ऊंचाई छूते देखो.
क्या वो अंततः नीचे अवश्य गिरेगी चाहे तुम जितने भी जोर से उसे उछालो? क्या वो हमेशा नीचे आएगी चाहे उसकी आरंभिक गति कितनी ही तीव्र क्यूँ न हो?

यदि धरती के गुरुत्वाकर्षण कि शक्ति जितनी भूतल के निकट होती है, उतनी ही रहे तो तुम चाहे जो बी कर लो, गेंद अंततः नीचे आएगी ही, चाहे तुम कितने भी जोर से उछालो. किन्तु धरती की सतह से तुम जितना ऊपर जाते हो गुरुत्वाकर्षण की शक्त उतनी ही क्षीण होती जाती है. उदहारणतः भूतल से २५०० कि.मी. की ऊंचाई पर सतह कि तुलना में गुरुत्वाकर्षण कि शक्ति केवल आधी ही रह जाती है.
इस स्थिति में मान लो कि तुम गेंद को इतनी जोर से उछालो कि वो इतनी तेज़ी से ऊपर जाये कि जब तक गुरुत्वाकर्षण के कारण उसकी गति आधी रह जाए, तब वो २५०० कि.मी. कि ऊंचाई तक पहुँच गयी हो. तब गेंद कि गति आरंभिक गति से आधी ही होगी, किन्तु धरती का गुरुत्वाकर्षण भी उसे आधी ही शक्ति से अपनी और आकर्षित करेगा व गेंद कि गति उतनी शीघ्रता से धीमी नहीं पड़ेगी. वह गेंद धीमी गति से और अधिक ऊंचाई तक जाती जाएगी, पर धरती के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव भी उस पर कम होया जायेगा.
इस परिस्थिति में गेंद ऊपर ही जाती जाएगी. यद्यपि उसकी गति धीमी पड़ती जाएगी, क्षीण होता गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव उसे कभी पूर्णतः रोक नहीं पायेगा. अतः गेंद कभी वापस नहीं आएगी. गेंद की वो प्रारंभिक गति जिससे फेंके जाने पर धरती का गुरुत्वाकर्षण उसे वापस नहीं खींच पता 'निस्तार गति' (एस्केप वेलासिटी) कहलाती है.
धरती पर निस्तार गति ११.२ कि.मी. प्रति सेकंड, या ४०,५५५ कि.मी. प्रति घंटा है. यदि ११.२ कि.मी. प्रति सेकंड या अधिक की गति से किसी वस्तु को ऊपर कि और उछाला जाये तो वो कभी वापस नीचे नहीं आएगी. वो तब तक ऊपर जाती जाएगी जब तक वो किसी वस्तु से टकरा नहीं जाती. यदि उस वस्तु को सही दिशा में फेंका जाए, तो वो तब तक ऊपर जाती जाएगी जब तक वो चन्द्रमा से नहीं टकरा जाती.
तो ये चन्द्रमा तक पहुँचने का एक उपाय है– केवल किसी वस्तु को बहुत जोर से ऊपर उछालना.
वास्तव में कोई भी गेंद को इतनी जोर से नहीं उछल सकता कि वो ११.२ कि.मी. प्रति सेकंड कि रफ़्तार से ऊपर जा पाए. यद्यपि मानवीय मांसपेशियों से अधिक शक्तिशाली वस्तुएं हैं.
उदहारणतः बारूद का धमाका तोप गोले को कसी मानव द्वारा फेंके गए गोले कि तुलना में अधिक वेग से फेंक सकता है. तो फिर क्या ऐसा अंतरिक्षयान संभव नहीं जिसमे स्वर होकर लोग चद्रमा तक उछाले जा सकें?
१८६५ में फ्रांसीसी विज्ञान कथाकार जूल्स वर्न ने 'फ्राम द अर्थ टू द मून' (धरती से चन्द्रमा तक) नामक उपन्यास लखा, जिसमें उन्होंने ऐसे लोगों का वर्णन किया जिन्हें एक विशाल तोप द्वारा चन्द्रमा तक पहुँचाया गया था.
ये सुनाने में अच्छा लगता है किन्तु एक जाल है– प्राणघातक जाल.
मन लो कि तोप के भीतर यान स्थिर है. विस्फोट होने पर ये यान ११.२ कि.मी. प्रति सेकंड कि गति से तोप के मुख से निकलता है. अर्थात यान कि रफ़्तार शून्य से कम से कम ११.२ कि.मी. प्रति सेकंड उतनी देर में बाद जाएगी, जितनी देर उसे तोप के तले से उसके मुख तक आने में लगेगी. गति की इस वृद्धि को एक्सलेरेशन (गतिवर्धन) कहते हैं, जिसका लातिन में अर्थ होता है 'शीघ्र करना'.
किन्तु यदि तुम एक ऐसे गतिशील या गतिवर्धक यान में हो, तो वो यान तुम्हें विपरीत दिशा में धकेलेगा ताकि तुम्हारी गति भी बढ़ सके. तुम्हें एशिया महसूस होगा कि तुम उसके विपरीत जा रहे हो. विपरीत दिशा में ऐसा धक्का तुमने गतिवर्धक कार में महसूस किया होगा. जब लिफ्ट ऊपर कि और चलती है तब तुम नीचे कि और ऐसा धक्का महसूस कर सकते हो.
गति–वर्द्धन जितना अधिक होगा रफ़्तार उतनी ही शीघ्रता से बढ़ेगी, व सीट पर पीछे कि और अथवा धरती कि और तुम्हें उतना ही जोर का धक्का लगेगा. अदि यान शून्य से ११.२ कि.मी. की रफ़्तार से बहुत कम समय में चलने लगे तो गति वर्द्धन इतना अधिक होगा कि तुम्हारे शरीर के टुकड़े–टुकड़े हो जायेंगे व तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी.
यदि जूल्स वर्न के वर्णन अनुसार यान को तोप से दागा गया होता तो उस पर सवार सभी यात्रियों की उसी क्षण मृत्यु हो गयी होती. तथापि उतनी रफ़्तार तो हमें चाहिए ही. इसका उपाय है कि गति–वर्द्धन किया जाये, परन्तु, धीरे–धीरे. कैसे?
इस उत्तर की शुरुआत हुई अंग्रेज़ वैज्ञानिक इसाक न्यूटन के साथ.

३. रॉकेट (बाण–हवाई)

१६८७ में न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के दबाव पर एक पुस्तक लिखी. इस पुस्तक में उनहोंने गुरुत्वाकर्षण के तीन सिद्धांतों का वर्णन किया. इनमें तीसरा सिद्धांत है: "किसी एक दिशा में की गयी क्रिया कि विपरीत दिशा में उसके बराबर प्रतिक्रया होती है."
उदाहरणतः, मान लो कि तुम अलमूनियम की एक ऐसी सपाट थाली पर बैठे हो जोकि बर्फ के विशाल पिण्डक पर रखी है. तुम्हारे साथ उस थाली पर धातु से बनीं भारी गेंदें भी रखी हैं. तुम उनमें से एक गेंद उठा कर उसे एक निश्चित दिशा में फेंक देते हो. ये क्रिया है.
तुम्हारे गेंद फेंकते ही बर्फ पर रखी थाली जिस दिशा में तुमने गेंद फेंकी थी, उसके विपरीत सरकने लगेगी. ये प्रतिक्रिया है. थाली कि गति गेंद जितनी नहीं होगी क्यूंकि वह गेंद से अधिक वज़नी है. थाली के वज़न व उसकी गति का गुणन फल गेंद के वज़न व उसकी गति के गुणन फल जितना है. अर्थात क्रिया व प्रतिक्रया बराबर हैं.
यदि तुम पहली गेंद की दिशा में ही एक और गेंद फेंकोगे, तो थाली को एक और धक्का लगेगा और वो अधिक गति से सरकने लगेगी. अगर तुम गेंद पर गेंद फेकते जाओगे, तो थाली और अधिक गति से सरकने लगेगी. यदि तुम पर्याप्त गेंदें एक के बाद एक उसी दिशा में फेंकते जाओ, तो तुम थाली की गति को बहुत अधिक तेज़ कर सकते हो. अगर तुम्हारे पास पर्याप्त गेंदें व ऊर्जा हो, व बर्फ का पिण्डक अत्यंत विशाल व समतल हो, तो तुम परिकल्पना में तुम अंततः ११.२ कि.मी. प्रति घंटे की रफ़्तार प्राप्त कर सकते हो. गति–वर्धन इतना धीरे होगा, कि तुम्हें कोई क्षति नहीं पहुंचेगी.
इसका हवा से कोई लेना–देना नहीं है. यदि गतिरोधक हवा न हो, तो थाली और भी अधिक आसानी से गतिशील होगी. थाली अंतरिक्ष में होगी, जहाँ उसके चारों और शून्य के सिवाय कुछ न हो, तो क्रिया व प्रतिक्रया धरती से कहीं बेहतर काम करेंगीं.
१८९१ में जर्मन आविष्कारक हरमन गैंसविडट ने सुझाया कि यदि वायुयान से तोप द्वारा गोले फेंके जाएँ तो वह बेहतर तरीके से काम करेगा. गति–वर्धन इतना धीरे होगा कि अंतरिक्षयान में सवार यात्रियों को कोई क्षति नहीं पहुंचाएगा, केवल प्रत्येक गोला दागने एक साथ थोडा सा पीछे धकेलेगा.
जूल्ज़ वर्न की तुलना में इस प्रकार गोले दागना अधिक व्यवहारिक है, किन्तु केवल तब जब यान पहले से अंतरिक्ष में हो. यान को भूतल से अंतरिक्ष तक ले जाना और बात है. इस स्थिति में गैंसविडट की युक्ति व्यवहारिक नहीं है. यदि शुरू में यान धरती कि सतह पर हो, तो एक गोला दागते ही धरती का गुरुत्वाकर्षण उस यान की गति को धीरे करने लगेगा, जिसकी वजह से अगला गोला उसके शीघ्र बाद ही दागना पड़ेगा ताकि यान अधिक गति न खोए. गोले इतनी शीघ्रता से दागने होंगे कि ये अनुमान लगाना ही कठिन है कि तोपों को किस प्रकार एक के बाद एक क्रमानुसार दागा जाए. अब मान लो, इसकी जगह, हम कोई ऐसा उपाय निकालें जिससे किसी ऐसी चीज़ को दागा जाए जो एक ही दिशा में फूट कर निकले. इस प्रकार, यान एक ही दिशा में धीमे, स्थायी गति–वर्धन से चलेगा.
वास्तव में, ऐसा करने का सही तरीका तो गैंसविडट के समय में, और उनसे कई सदियों पहले ही ज्ञात था. सही तरीका है रॉकेट नामक वस्तु का प्रयोग करना.
मान लो तुम्हारे पास गत्ते का सिलेंडर है जिसका मुख एक ओर से बंद है. अब तुम इसमें बारूद भर के, दूसरी ओर से उसका मुख हलके से बंद करके उसमें एक सुतली लगा दो. इस सुतली का एक सिरा बारूद में होगा, व दूसरा बहार जहाँ से तुम उसे जला सको. इस सिलेंडर को एक तीले से जोड़ दिया जाये तो वह उसे हवा में संतुलित करेगा व एक ही दिशा में आगे बढेगा. ये दिवाली में चलाये जाने वाले रॉकेट की तरह होगा.
अब सुतली को जला दो. सुतली के जलने पर, आग बारूद तक पहुंचेगी और वह तीव्रता से जलने लगेगा (दाह), जिसके कारण ढेर सारी गैसें पैदा होंगीं. यदि सिलेंडर का मुख कस

कर बंद कर दिया जाए, तो गैसें फ़ैल कर जोर से हानिकारक धमाका करेंगी. किन्तु एक सिरा तो हलके से ही बंद है. यहाँ से गैसें हिसहिसाती हुई ध्वनी के साथ बहार निकलेंगी व रॉकेट विपरीत दिशा में उड़ने लगेगा. जैसे जैसे गैसों का निकास बहार आता जायेगा, रॉकेट अधिक गति से आगे बढेगा, व सारा बारूद समाप्त होने पर अपनी चरम गति पर पहुँच जायेगा. तत्पश्चात, वो धीरे होकर अंततः धरती पर गिर जायेगा.
बारूद का आविष्कार चीनियों द्वारा किया गया था. १२०० के दशक में चीनी मनोरंजन हेतु रॉकेट व अन्य आतिशबाजियां बनाकर प्रकाश व ध्वनि का आनंद उठाते थे. रॉकेट का प्रयग वो युद्ध में शत्रु को डराने के लिए भी करते थे.
१२०० के दशक में बारूद व रॉकेटों की जानकारी पश्चिम की ओर यूरोप में फ़ैल गयी. यूरोपीय नागरिक बारूद का प्रयोग मुख्यतः तोपों में ही करते थे, किन्तु रॉकेट काल मनोरंजन के लिए ही उपयोग में लाये जाते थे.
१७८० के दशक में अंग्रेज़ भारतीय सेनानियों के विरूद्ध लड़ रहे थे. भारतीय रॉकेटों का प्रयोग अंग्रेजी सेना पर पत्थर फेंकने के लिए करते थे. तोपों का नियंत्रण करने वाले एक अंग्रेज़ अधिकारी विलियम कौन्ग्रीव ने ये देखा. उसने सोचा कि यदि ठीक तरह से निर्माण किया जाए, तो तोप गोलों की तुलना में रॉकेट न केवल अधिक दूरी तक दागे जा सकते हैं, अपितु शरु को अधिक हानि भी पहुंचा सकते हैं.
उन्होंने बेहतर रॉकेटों का निर्माण किया, व १८०० के दशक में थल व जल पर अंग्रेज़ सेना ने शत्रु के विरुद्ध इनका प्रयोग किया. इनमें से एक शत्रु अल्पायु राज्य था– संयुक्त राष्ट्र अमरीका.
१८१२ से १८१४ के बीच संयुक्त राष्ट्र अमरीका व ग्रेट ब्रिटेन में युद्ध हुआ. १८१४ में अंग्रेजों ने बाल्टीमोर के बंदरगाह पर स्थित मेक हेनरी किले की घेराबंदी कर ली. अन्य शास्त्रों सहित उन्होंने किले पर रॉकेट भी दागे.
सारी रात बमबारी जारी रही, और ब्रितानी जहाज़ पर सवार एक अमरीकी, फ्रांसिस स्कॉट की (जोकि जहाज़ पर बंदी बनाये गए एक अन्य अमरीकी को रिहा कराने आया था) उत्सुकतावश ये देखता रहा. भोर होते ही की न किले पर अमरीकी झंडा फेहराता हुआ देखा, और वो ये समझ गया कि ब्रितानी बमबारी असफल रही है. प्रसन्न होकर उसने एक कविता लिखी, जिसे हम 'द स्टार–स्पेंगल्ड बैन्नर' (तारों वाला झंडा) के नाम से जानते हैं. अंततः ये अमरीका का राष्ट्र–गान बना. कविता के प्रथम पद में एक जगह, वे रात्री की बमबारी का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं: "एंड द रॉकेट्स रेड ग्लेर, द बोम्ब्स बरस्टिंग इन द एयर–".
किन्तु रॉकेटों का प्रयोग बहुत अधिक वर्षों तक नहीं किया गया, क्यूंकि तोपों को लगातार बेहतर बनाया जाता रहा, व जल्दी ही वे बढे व भारी गोले रॉकेटों कि तुलना में अधिक दूर तक दागने के योग्य बन गयीं.
परन्तु इसका अर्थ ये नहीं है कि रॉकेटों का फिर कभी प्रयोग नहीं किया गया. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, १९४० के दशक में, एक बार फिर रॉकेटों को आज़माया गया. इसका एक उदहारण ये है, कि सैनिक अपने साथ 'बजूका' नामक हलकी नली नुमा बन्दूक लेकर चलते थे, जिससे वो तोपों पर रॉकेट दाग सकें.
द्वितीय विश्व युद्ध के समय ऐसे हवाईजहाजों का भी आविष्कार किया गया जो रॉकेट के सिद्धांतों पर चलते थे. गैसों का निकास इन वायुयानों के पिछले भाग से भव्य फुहार के रूप में निकलता था, जिसके कारण यान बहुत तेज़ गति से आगे बढ़ता था. १९५२ में इन जेट यानों का प्रयोग शांतिप्रिय कार्यों में होने लगा. आजकल लोग इन्हीं जेट विमानों में विश्व भर की सैर करते हैं.
हवा की तुलना में जेट विमान शून्य में बेहतर रूप से कार्य करते हैं. तो क्या इस प्रकार के क्रिया–प्रतिक्रिया को धरती से चन्द्रमा तक यान भेजने के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता?
ये तर्क सर्वप्रथम १६५० में सुझाया गया था. ये न्यूटन के संसार को क्रिया–प्रतिक्रिया के सिद्धांत समझाने की प्रथम चेष्टा से लगभग ४० वर्ष पहले की बात है. ये उपाय सुझाने वाले व्यक्ति थे फ्रांसिसी विज्ञान कथाकार सिरानो दे बेर्गेराक.
उन्होंने 'वोएज टू द मून' (चनरमा की यात्रा) नामक उपन्यास लिखा. इसमें उन्होंने चन्द्रमा तक पहुँचने के ७ तरीकों के बारे में बताया. इनमें से ६ संभव नहीं थे, किन्तु सातवाँ रॉकेटों द्वारा संभव था. (सिरानो की नाक बहुत लम्बी थी, जिसके कारण अकसर उनका अपना उपहास करने वालों से द्वन्द युद्ध हो जाया जाया करता था. उनके बारे में एक प्रसिद्ध नाटक भी बना है, जिसके कारण लोग उन्हें लम्बी नाक व द्वन्द युद्ध के लिए याद करते हैं और ये भूल जाते हैं कि वो एक विज्ञान उपन्यासकार भी थे.)
इसको २५० वर्ष बीत गए इससे पहले की कोई वैज्ञानिक रॉकेट द्वारा अंतरिक्ष की यात्रा के विषय में विचार करता. जिसने ये किया वो थे रूस के कोंसटेनटिन ई. सिओल्कौस्की. उनका जन्म १७ सितम्बर १८५७ में हुआ था. केवल ९ वर्ष कि आयु में एक कर्ण संक्रामक रोग ने उन्हें लगभग पूर्ण रूप से बहरा बना दिया, और इस कारण उस समय के रूस में उनकी शिक्षा प्राप्ति के द्वार बंद हो गए.
तथापि, पुस्तकों से उन्होंने आवश्यकतानुसार ज्ञान स्वयं प्राप्त किया, और अनेक मौलिक सिद्धांतों का पता लगाया.
१८९५ में उहोने अंतरिक्षयानों के बारे में लिखना आरम्भ किया. सिरानो कि भांति, सिओल्कौस्की ने भी सोचा की अंतरिक्षयान रॉकेट द्वारा चलाये जा सकते हैं. यद्यपि सिओल्कौस्की ने रॉकेटों में बारूद के विषय में नहीं सोचा था. वे तो पराफीन के तेल जैसे तरल ईंधनों के बारे में सोच रहे थे. इस प्रकार के इंधन बारूद कि तुलना में अधिक ऊर्जा प्रदान करते हैं, व तरल होने के कारण आसानी से नियंत्रित किये जा सकते हैं. उन्हें कम या अधिक मात्र में जला कर धीमा या तेज़ जलाया जा सकता है.
आज हम अपने अधिकतर विमानों में तरल इंधन का उपयोग करते हैं. उदहारणतः गाड़ियों व हवाईजहाजों को चलाने हेतु पेट्रोल का प्रयोग होता है. यद्यपि, चलने योग्य ऊर्जा प्रदान करने हेतु पेट्रोल का हवा में पायी जाने वाली ऑक्सीजन गैस से मिलना अनिवार्य है– जोकि सरल बात है क्यूंकि ये विमान हवा में ही चलते हैं.
किन्तु, अंतरिक्ष के शून्य में चलो रहे किसी यान कि बात और है. उसके आस–पास हवा नहीं होती, अतः चलने के लिए रॉकेट को अपना ऑक्सीजन स्वयं ढोना पड़ता है, जिसे की ठंडा करके तरल बना दिया जाता है ताकि थोड़ी जगह में अधिक ऑक्सीजन रखा जा सके.
सिओल्कौस्की ये बात समझ गए, व १९०३ में उन्होंने एक उडययन पत्रिका के लिए लेखों की एक श्रंखला प्रारंभ की जिसमें उन्होंने रॉकेट के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन किया. उन्होंने न केवल तरल इंधन व तरल ऑक्सीजन का वर्णन किया, अपितु अंतरिक्षपोशाक व अंतरिक्ष में उपनिवेशन आदि विषयों पर भी अपने विचार प्रस्तुत किये. जीवन के अंतिम चरण में, उन्होंने 'आउटसाइड द अर्थ' (धरती से परे) नामक एक विज्ञान उपन्यास की रचना भी की.
यद्यपि सिओल्कौस्की ने रॉकेट चलाने की तकरीबनसभी तकनीकों का पता लगा लिया था, उन्होंने कभी उसके निर्माण की चेष्टा नहीं करी. १९ सितम्बर १९३५ को उनका निधन हो गया. हालांकि सोवियत संघ में उनका बड़ा मान था, उस देश के बाहर शायद ही किसी ने उनके बारे में सुना हो.

४. तरल–इंधन चालित रॉकेट

तरल इंधन से चलने वाले रॉकेट बनाने वाले प्रथम व्यक्ति थे अमरीकी वैज्ञानिक रॉबर्ट हचिंग्स गौडार्ड. उनका जन्म ५ अक्टूबर १८८८ को मेसाचुसेट्स स्थित वोर्चेस्टर में हुआ था. बाल्यकाल से ही उनकी रूचि विज्ञान उपन्यासों में थी और उन्होंने एच. जी. वेल्स द्वारा रचित 'द वार ऑफ द वर्ल्ड्स' (vishwon का युद्ध) पढ़ा. १८९८ में प्रकाशित हुए इस उपन्यास में बुद्धिजीवी मंगल वासियों द्वारा पृथ्वी पर आक्रमण का वर्णन था.
इसे पढने से गौडार्ड को कुछ काल्पनिक सिद्धांतों की प्रेरणा मिली. कॉलेज के ही दिनों में उन्होंने 'ट्रैवेलिंग इन १९५०' (१९५० में यात्रा) नामक एक लेख लिखा. इसमें उन्होंने ऐसी रेलगाड़ियों का वर्णन किया जिहें हवा–रहित सुरंग में चुम्बक द्वारा खींच–कर चलाया जा सकता था. उन्होंने कल्पना ई कि ये रेलगाड़ियाँ बोस्टन से न्यूयॉर्क तक की यात्रा १० मिनट में पूरी कर लेंगीं. (दुर्भाग्यवश १९५० के आगमन पर भी ऐसी कोई रेलगाड़ी नहीं थी, व ये यात्रा अब भी ४ घंटे की अवधि में ही पूर्ण होती थी).

फिर गौडार्ड की रूचि रॉकेटों में बढ़ी. १९१४ तक उन्होंने रॉकेटों से जुड़े २ आविष्कारों के लिए सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिए थे. १९१९ में उन्होंने केवल ६९ पेजों वाली एक छोटी–सी पुस्तक लखी, जिसमें उन्होंने रॉकेटों व चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए उनके उपयोग का वर्णन किया. उनके तरीके सिओलकॉस्की से मेल खाते थे.

तत्पश्चात गौडार्ड पेट्रोल व तरल ऑक्सीजन पर चलने वाले रॉकेट के निर्माण में जुट गए. १६ मार्च १९२६ को, औबर्न, मेसाचुसेट्स में स्थित अपनी काची के खेत से वे ऐसा प्रथम रॉकेट ऊपर भेजने के लिए तैयार थे. उनकी पत्नी ने रॉकेट के साथ उनकी तस्वीर ली. उस दिन बहुत ठण्ड थी, व भूमि पर बर्फ भी थी. लम्बा कोट व जूते पहने गौडार्ड एक ऐसी वस्तु के साथ खड़े थे जोकि देखने में एक आरोही ढांचा प्रतीत होता था. उसके ऊपरी सिरे पर १२० से.मी. लम्बा व १५ से.मी. चौड़ा एक छोटा–सा रॉकेट लगा था.

वहां कोई संवाददाता दर्शक नहीं था. वास्तव में, वहां कोई दर्शक ही नहीं थे, क्यूंकि किसी को कोई रूचि नहीं थी. तथापि गौडार्ड अंतरिक्ष उड़ान के कोलंबस थे. वो सर्वप्रथम ऐसा रॉकेट दागने वाले थे जो अंततः अंतरिक्ष में जाने वाला था.

गौडार्ड ने सुतली जला दी, और रॉकेट हवा में ९६.५ कि.मी. प्रति घंटे की रफ़्तार से ५६ मी. ऊंचा उड़ा. ये बहुत अधिक नहीं था, किन्तु इसने यह दिखा दया कि गौडार्ड का रॉकेट इंजन काम कर सकता था. अब उन्हें बढे रॉकेटों का निर्माण करना था.

वाशिंगटन स्थित स्मिथसोनियन इंस्टीटूट से कुछ धनराशी प्राप्त कर, जुलाई १९२९ में, उन्होंने मेसाचुसेट्स स्थित वोर्चेस्टर से बाधा रॉकेट दागा. ये पहले वाले कि तुलना में अधिक गति से अधिक ऊंचाई तक गया. इस पर एक बैरोमीटर, एक थर्मामीटर व एक छोटा सा कैमरा लगा था. ये अपनी तरह का सर्वप्रथम रॉकेट था जोकि ऐसे उपकरणों से अंतरिक्ष व वायुमंडल की ऊपरी सतहों कि जानकारी प्राप्त कर सकता था.

किन्तु गौडार्ड मुश्किल में थे. लोग उन्हें अजीब समझते थे, और ये जानकार कि उनकी मान्यता है कि मानव चन्द्रमा तक पहुँच सकता है उनका उपहास करते थे. न्यूयॉर्क टाइम्स ने एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित जिसमें कहा गया कि गौडार्ड मूर्ख हैं, क्यूंकि हवा रहित अंतरिक्ष में उनके रॉकेट काम नहीं करेंगे. इस सम्पादकीय लेख ने केवल यही सिद्ध किया की इसे लिखने वाला व्यक्ति अज्ञानी था व क्रिया–प्रतिक्रिया नहीं समझता था.

फिर गौडार्ड के रॉकेट उड़ने से पहले तेज़ आवाज़ करते थे. उनके पड़ोसियों ने दमकल और पुलिस बुला ली, और गौडार्ड को तुरंत सभी रॉकेट प्रयोग रोक देने का आदेश दे दिया गया.

सौभाग्यवश, हवाई उड़ान के शौक़ीन चार्ल्स लिंडबर्ग ने प्रयोगों के बारे में सुना, और अपनी जान–पहचान से उन्होंने गौडार्ड के लिए धन एकत्र किया. उस धनराशी से गौडार्ड ने अपने लिए न्यू मेक्सिको में एक जगह ले ली जहाँ वे अपने प्रयोग जारी रख सकें. वो एक सुनसान स्थान था जहाँ रॉकेटों कि आवाज़ किसीको परेशां नहीं कर सकती थी.

यहाँ उन्होंने विशाल रॉकेटों का निर्माण किया व तकरीबन उन सभी तकनीकों का भी पता लगा लिया जो आने वाले वर्षों में रॉकेटों में प्रयोग की जाने वाली थीं.

उदाहरणतः, उन्होंने एक से अधिक चरण में चलने वाले रॉकेटों का आविष्कार किया. इस प्रकार के रॉकेट का निम्न भाग, प्रथम चरण, इंर्धन व ऑक्सीजन से भरा रहता है जो कि जल कर रॉकेट को हवा में ऊंचा उठाता है. इंर्धन समाप्त होने पर, प्रथम चरण रुपी ये भारी भाग रॉकेट से अलग हो जाता है,व दूसरा चरण, ऊपरी भाग में रखा इंर्धन व ऑक्सीजन जलने लगते हैं.

दूसरे चरण की ऊर्जा रॉकेट को और अधिक रफ़्तार से ऊंचाई पर ले जाती है, क्यूंकि अब उसे नीचे कि ओर खींचनेवाला भारी प्रथम चरण रुपी भाग भी उस से अलग हो चुका है. दूसरा चरण समाप्त होने पर ये भी अलग हो जाता है, व तीसरा चरण उसे आगे ले जाता है.

इस प्रकार सारा इंर्धन व ऑक्सीजन एक ही चरण में लिए रॉकेट कि तुलना में ये तीव्र गति से अधिक ऊंचाई तक जा सकता है.

कार्य सम्पूर्ण करने से पहले गौडार्ड को, रॉकेट सम्बन्धी आविष्कारों के २१४ अधिकार प्राप्त थे. १९३० से १९३५ के बीच, उन्होंने ८८५ कि.मी. प्रति घंटे कि रफ़्तार से २.४ कि.मी. कि ऊंचाई तक जाने वाले रॉकेट छोड़े.

किन्तु इस दौरान, गौडार्ड के कार्य में लगभग कोई भी रूचि नहीं दिखी. कोई ये दर्शाता भी नही था कि ऐसे किसी काम के बारे में उन्हें कुछ पता भी है. निस्संदेह, अमरीकी सरकार ने उन्हें कोई बढ़ावा देने के लिए कुछ नहीं किया.

जर्मनी में बात कुछ और थी. वहां जर्मन मूल के रोमानी हर्मन ओबर्थ द्वारा १९२३ में प्रकाशित की गयी पुस्तक द्वारा रॉकेट विज्ञान में रूचि जागृत हुई थी. उनके विचार सिओल्कौस्कि व गौडार्ड से मिलते थे.

१९२७ में 'सोसाइटी फॉर स्पेस ट्रैवल' (अंतरिक्ष यात्रा संघ) का जर्मनी में संगठन हुआ. इसके शुरूआती सदस्यों में विली ले नामक एक युवा था, जिसने तत्पश्चात वर्नर ब्रौन नामक एक और युवक को संघ से जोड़ा.

इस संघ ने तरल–इंर्धन पर चलने वाले ८५ रॉकेटों का निर्माण कर उन्हें दागा. इनमें से एक १.५ कि.मी. की ऊंचाई तक पहुंचा. पर संघ ने उतना अच्छा काम नहीं किया जितना गौडार्ड अकेले ही कर रहे थे, परन्तु इसे आवश्यक सहायता मिलने लगी.

१९३३ में अडोल्फ़ हिटलर ने जर्मनी कि सत्ता संभाल ली. वो एक क्रूर व आततायी था जो जर्मनी को अत्यंत शक्तिशाली बनाकर अधिक से अधिक पडोसी देशों पर आक्रमण कर उन पर विजय प्राप्त करना चाहता था. उसने निर्णय किया कि रॉकेट उत्तम शाश्त्र सिद्ध होंगे, व इसलिए उसने संघ को सहयोग दिया.

विली के हिटलर की मंशा जानकर भयभीत हो गया व तुरंत जर्मनी छोड़ कर चला गया. किन्तु वर्नर ब्रौन पीछे रह गया, व उसने हिटलर के लिए रॉकेट प्रयोगों का नेतृत्त्व संभाल लिया.

१९३६ में उत्तरी जर्मनी में बाल्टिक समुद्र के तट पर रॉकेट सम्बन्धी प्रयोगों के लिए एक गुप्त स्थान का निर्माण किया गया. ढेर सारे सरकारी धन कि सहायता से वर्नर वॉन ब्रौन सफलता प्राप्त करने लगा. १९३८ तक उन्होंने १७ कि.मी. तक उड़ने वाले रॉकेटों का निर्माण कर लिया था.

अगले ही वर्ष यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया, और हिटलर ने सुझाव दिया कि वॉन ब्रौन 'मिसाइल' का निर्माण करें– ऐसे रॉकेट जोकि लेकर कई सौ कि.मी. दूर शत्रु कि सीमा पर निशाना साध कर दागे जा सकें.

वो इतनी तीव्रता से उड़ते थे कि वायुयान रोधक बन्दोकें उन्हें निशाना नहीं बना पायेंगे.

इस प्रकार का पहला शास्त्र 'वी–१' नामक एक प्रकार का स्वचालित वायुयान था. इसमें वी 'वग्लातंग' के लिए था जिसका जर्मन में अर्थ होता है प्रतिशोध. तथापि १९४४ तक वोन ब्रौन ने एक बेहतरीन मिसाइल तैयार कर ली थी जोकि एक वास्तविक रॉकेट था व ध्वनी की गति से तेज़ चलता था. ये 'वी–२' रॉकेट था.

कुल मिलाकर जर्मनों ने ४,३०० वी–२ रॉकेट दागे, जिनमें से १,२३० लन्दन में गिरे. इन मिसाइलों ने २,५११ ब्रितानी नागरिकों को मार डाला व एनी ५,८६९ को गंभीर रूप से घायल कर दिया. विश्व का सौभाग्य है, कि वी–२ रॉकेट हिटलर के बचाव के लिए देर से आये. जब तक रॉकेट उड़ने योग्य हुए तब तक वो युद्ध में परास्त होने लगा था, और वे आगे बढ़कर उसका घेराव करती सेनाओं को पीछे मोड़ने के लिए पर्याप्त नहीं थे. ८ मई १९४५ को जर्मनी ने आत्मसमर्पण कर दिया.

गौडार्ड वी–२ रॉकेटों कि क्रिया देखने के लिए जीवित रहे. उनका निधन १० अगस्त १९४५ को हुआ.

वी–२ रॉकेटों ने संयुक्त राष्ट्र व सोविअत संघ की रौएतों में रूचि बड़ा दी. आखिर ये दोनों देश एक दूसरे से डरते थे व इसलिए अधिक से अधिक शास्त्र संग्रहित करना चाहते थे. तथापि प्रत्येक देश कि सेनाओं ने जर्मनी में प्रवेश पाते ही उनके रॉकेट विशेषज्ञों को बंदी बनाने की चेष्टा करी. संयुक्त राष्ट्र को स्वयं वोन ब्रौन मिले.

तत्पश्चात दोनों देशों ने बड़ी व बेहतर मिसाइलें बनाने के लिए कड़ी मेहनत करी. १९५० के दशक तक निर्मित दानवीय मिसाइलों कि तुलना में पुरानी वी–२ केवा खिलौना मात्र थी. तथापि, संयुक्त राष्ट्र व सोविअत संघ दोनों के पास ऐसी मिसाइलें थीं जिन्हें धरती के किसी भी हिस्से पर दागा जा सकता था. और तो और, ये मिसाइलें वी–२ कि भांति साधारण विस्फोटक नहीं अणु–बम लेकर चलती थीं.

अब दोनों देशों के पास ऐसे शास्त्र थे जोकि एक दूसरे को और बाकी के विश्व के मुख्य अंश का विनाश कर सकते थे. निस्संदेह सिओल्कौसकी व गौडार्ड के मस्तिष्क ने कभी इसका विचार भी नहीं क्या होगा. उन्होंने तो अंतरिक्ष कि यात्रा के लिए रॉकेट चाहे थे.
वो भी हो रहा था. जर्मनी पर आक्रमण करके, संयुक्त राष्ट्र ने अनेक वी–२ रॉकेट प्राप्त किये थे, जिनका प्रयोग वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए हो रहा था. उन्हें शहरों कि नहीं, अपितु आकाश कि ओर दागा जाता था. ये वी–२ विस्फोटक कि अपेक्षा उपकरणों सहित दागे जाते थे जिससे की वायुमंडल कि ऊपरी सतहों के बारे में जानकारी मिले. इनमें से एक वी–२ ने १८३.४ कि.मी. की ऊंचाई छुई, जोकि किसी भी वायुयान व गुब्बारे कि तुलना में चार गुना थी.
१९४९ में संयुक्त राष्ट्र ने एक वी–२ के ऊपर एक छोटा–सा अमरीकी रॉकेट लगा दिया. जब वी–२ अपनी चरम ऊंचाई तक पहुँच गया, तब वह छोटा रॉकेट उड़ा व उसने ३८६ कि.मी. की ऊंचाई प्राप्त की. १६० कि.मी. कि ऊंचाई पर रॉकेट व्यवहारिक दृष्टि से अंतरिक्ष में पहुँच जाता है.
तथापि, हवा में ऊपर जाते किसी भी रॉकेट को धरती का गुरुत्वाकर्षण नीचे कि ओर खींचता है, और वह अंतरिक्ष में केवल चाँद मिनट ही रहता है. ये अंतरिश के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है.
क्या अंतरिक्ष में रॉकेट को धरती पर बिना गिरे देर तक रखने का कोई उपाय है? हाँ, है, और १९५० में संयुक्त राष्ट्र व सोविअत संघ दोनों ने इस पर विचार करना आरम्भ किया.

५. (मानव–निर्मित) उपग्रह व अंतरिक्षयान

मान लो ऊपर भेजने के पश्चात १६० कि.मी. या उससे अधिक की ऊँचाई पार करने पर रॉकेट को इस प्रकार मोड़ दिया जाए कि वो धरती की सतह के समानांतर चलने लगे. रॉकेट नीचे गिरने लगेग, किन्तु भूतल गोलाकार है, इसलिए वह सदैव रॉकेट से दूर होता चला जायेगा.
यदि रॉकेट पर्याप्त गति से चले, तो उसके भूतल कि ओर गिरने कि गति भूतल के उससे दूर जाने के समान हो सकती है. ऐसे में रॉकेट कभी धरती तक नहीं पहुंचेगा. वो केवल धरती के चक्कर लगा रहा है. वह धरती की कक्षा (ग्रहपथ) में स्थापित हो गया है. ऐसे रॉकेट को उपग्रह कहते हैं. चन्द्रमा धरती का प्राकृतिक उपग्रह है. लगभग ३०० वर्ष पूर्व, इसाक न्यूटन ने बताया था कि मानव निर्मित उप्ग्रव संभव हैं. यद्यपि इन्हें ग्रहपथ पर स्थापित करना, गति पर निर्भर करता है. एक उपग्रह को भूतल से १६० कि.मी. ऊपर ग्रहपथ पर चलने के लिए कम से कम ८ कि.मी. प्रति सेकंड कि रफ़्तार चाहिए.
१९५० के दशक से पहले संयुक्त राष्ट्र व सोविअत संघ के पास इतने शक्तिशाली रॉकेट नहीं थे जो ऐसी गति से चलो सकें. १९५५ में संयुक्त राष्ट्र ने एक उपग्रह को धरती कि कक्षा में स्थापित करने कि चेष्ठा करने कि घोषणा कर दी. तत्पश्चात सोविअत संघ ने भी ऐसा ही करने कि घोषणा कर दी.
अधिकतर अमरीकी नागरिकों को पूर्ण विशवास था कि संयुक्त राष्ट्र ऐसा करने में पहले सफलता प्राप्त करेगा, किन्तु वे आश्चर्यचकित रह गए. ४ अक्टूबर १९५७ को, सोविअत संघ ने सर्वप्रथम मानव निर्मित उपग्रह को धरती की कक्षा में स्थापित किया. वो इसे १७ सितम्बर को सिओल्कौस्कि की शतांश जन्म्शाताबदी के उत्सव के अवसर का रूप देना चाहते थे, किन्तु किसी कारणवश देर हो गयी. ४ अक्टूबर १९५७ को प्रायः 'अंतरिक्ष युग' का आरम्भ माना जाता है.
शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र अपने उपग्रह भेजने लगा. ३१ जनवरी १९५८ को वॉन ब्रौन ने प्रथम अमरीकी उपग्रह धरती कि कक्षा में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की. आने वाले वर्षों में, दोनों देशों ने सैंकड़ों उपग्रह भेजे.
ये उपग्रह पृथ्वी की स्थिति का अध्ययन करते हैं. कुछ उपग्रह अंतरिक्ष से पृथ्वी की तसवीरें लेते हैं. इस प्रकार, वैज्ञानिक बादलों के स्वरुप का अध्ययन कर, मौसम को बेहतर समझ सकते हैं. तूफानों कोआरंभ से देख कर उनका अनुकरण किया जा सकता है.
ऐसे उपग्रह हैं जो पृथ्वी के एक कोने से सन्देश प्राप्त कर उसे दूसरे तक पहुंचा सकते हैं. इस प्रकार किसी एक प्रदेश में रहने वाले लोगों के लिए टेलीविजन द्वारा धरती के सभी स्थानों को देख पाना संभव हो गया है.
ग्रहपथ पर जिस प्रकार उपग्रह अग्रसर होता है उसे विभिन्न स्थानों पर धरती का गुरुत्वाकर्षण मापने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है. धरती के आकार कि यथार्थ जानकारी भी ऐसे ही प्राप्त की जा सकती है. इस प्रकार पृथ्वी का बेहतरीन मानचित्रण किया जा सकता है.
कुछ उपग्रह वायुमंडल की ऊपरी सतहों से आने वाली ऐसी किरणों का अध्ययन करते हैं जो पृथ्वी के वायुमंडल को पार नहीं कर सकतीं. ये उपग्रह इन्हें वायुमंडल तक पहुँचने से पहले जांचते हैं. वे सूर्य व आकाश के अन्य भागों से आने वाली किरणों को भी जांचते हैं. अंतरिक्ष के बारे में ढेर सारी जानकारी एकत्रित की जा चुकी है और वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष के बारे में इतना कुछ जान लिया है जितना उपग्रहों के बिना शायद वो कभी न जान पाते.
उदहारणतः, कुछ उपग्रह वायुमंडल से परे वैद्युत–प्रभारित अणु खण्डों का अध्ययन करते हैं. उनहोंने धरती के चारों ओर इनकी विशाल श्रृंखलाओं की खोज की. 'वैन एलियन किरण' नामक ये श्रृंखलाएं धरती से परे सूर्य की विविप्रीत दिशा में पूँछ के सामान प्रतीत होती हैं. वैज्ञानिक चकित रह गए. उन्होंने कभी कलपना भी नहीं कि थी कि ऐसी कोई वस्तु संभव हो सकती है.
यदि उपग्रह को थोडा और तेज़ चलाया जाए, तो वो पूर्णतः धरती से दूर चला जाएगा. याद है ११.२ कि.मी. प्रति घंटे की वो निस्तार गति.
२ जनवरी १९५९ को, सोविअत संघ ने एक विशेष गतिशील उपग्रह भेजा जो चन्द्रमा के समीप से निकला व कभी वापिस नहीं आया. वह सूर्य की कक्षा में स्थापित हो गया. उसने चन्द्रमा के चारों ओर के अंतरिक्ष की प्रकृति का अध्ययन किया व रेडियो द्वारा जानकारी भेजी. ये सर्वप्रथम 'प्रोब' (जांचकर्ता यान) था.
१२ सितम्बर १९५९ को, रूसियों ने इतने ध्यान से एक और प्रोब भेजा कि इस बार वो चन्द्रमा तक पहुँचने में सफल रहा. ये किसी और दुनिया कि सतह चूने वाला सर्वप्रथम कृत्रिम पदार्थ था. अक्तूबर १९५९ को रूसियों ने कैमरा लगा एक एनी प्रोब चन्द्रमा पर भेजा. उसने चन्द्रमा की सतह की प्रथम तसवीरें भेजीं. धरती से चन्द्रमा का केवल एक ही भाग दिखाई देता है, उसके पिछले भाग को कभी देखा ही नहीं गया था.
तत्पश्चात संयुक्त राष्ट्र ने भी प्रोब भेजे. इनमें से कुछ चन्द्रमा कि कक्षा में स्थापित हो गए जिससे चन्द्रमा के प्रत्येक भाग का विस्तृत मानचित्रण संभव हो पाया.
फिर इन प्रोब को आहिस्ता से, बिना किसी क्षति के चन्द्रमा पर उतारा गया. वहां वो निकटता से चन्द्रमा कि सतह की तसवीरें ले सकते थे व तल की रासायनिक संरचना का विश्लेषण कर सकते थे. अमरीकी व रूसी द्दोनों ने ऐसा किया, किन्तु अमरीकियों को बेहतर परिणाम मिले.
एनी प्रोब एक कदम ओर आगे बढे. अपने उपकरण शुक्र से भी आगे ले जाने पर अमरीकी प्रोब ने पाया कि ये गृह अपेक्षा से कहीं अधिक गर्म है. एनी अमरीकी प्रोब मंगल व बुद्ध तक पहुँचने में सफल हुए व इन ग्रहों की निकट से तसवीरें लीं जिसके कारण इन विश्वों का मानचित्रण संभव हो पाया.
बुद्ध चन्द्रमा के सामान प्रतीत होता है. हालांकि मंगल पर भी चन्द्रमा के सामान गड्ढे हैं, मंगल की सतह पर कई ज्वालामुखी व घाटियाँ हैं. ऐसे चिन्ह भी हैं जो सूखी नदियों के समान प्रतीत होते हैं.
१९७० व १९८० के दशकों में अनेक अमरीकी प्रोब दूरगामी बृहस्पति व शनि जैसे विशाल ग्रहों के पार जा पहुंचे हैं. इनके उपग्रहों के चित्र भी लिए गए. सभी जगह गड्ढे दिखाई देते हैं. बृहस्पति का कैलिस्टो नामक उपग्रह समतल बर्फ से ढका है, व उसके उपग्रह, इओ पर अनेक ज्वालामुखी हैं. शनि के टाइटन नामक उपग्रह पर नाइट्रोजन से बना सघन वायुमंडल है, और शनि के छल्ले अनेक महीन छल्लों से निर्मित हैं.
रूसियों को अपने प्रोबों से संयुक्त राष्ट्र जितनी सफलता नहीं मिली. यद्यपि अनेक रूसी प्रोब शुक्र पर उतरने में सफल हुए व उन्होंने उसकी सतह पर तापमान व वायु के दबाव का अध्ययन किया.
परन्तु क्या मानव को ग्रह–पथ पर स्थापित करना संभव है? आखिर, हज़ारों वर्षों से उपन्यासकार मानव की अंतरिक्ष यात्रा कि कल्पना कर रहे हैं. क्या ये संभव था?

ऐसा न हो पाने का कोई संभव कारण नज़र में नहीं आता. संयुक्त राष्ट्र व सोविअत संघ दोनों ने पशुओं को भेज कर प्रयोग किये. ३ नवम्बर १९५७ को भेजे गए दूसरे रूसी उपग्रह में एक जीवित कुत्ता सवार था. वह कुत्ता रॉकेट दागने के झटके सहन कर गया व तब तक जीवित रहा जब तक उसे बिना किसी कष्ट के समाप्त करने हेतु विष न दे दिया गया. यद्यपि, धरती पर उसे वापिस लाने का कोई तरीका नहीं था.
तत्पश्चात, पशुओं को भेजकर उन्हें धरती पर सुरक्षित वापस लाया जाता रहा. संयुक्त राष्ट्र एक चिम्पांजी को धरती की कक्षा में स्थापित कर उसे सुरक्षित धरती पर लाने में सफल हुआ. दोनों देशों ने लोगों को अंतरिक्ष यात्रा के लिए तैयार करना शुरू कर दिया. संयुक्त राष्ट्र में इन लोगों को 'एस्ट्रोनॉट' कहते थे, जबकि रूस में इन्हें 'कोस्मोनॉट' कहा जाता था (दोनों शब्दों का हिंदी अनुवाद अंतरिक्ष यात्री है).

संयुक्त राष्ट्र ने सबसे पहले किसी मानव को धरती की कक्षा में स्थापित किया. १२ अप्रैल १९६१ को, रूसी अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन को धरती की कक्षा में स्थापित कर, एक बार पृथ्वी की परिक्रमा करने के उपरान्त सुरक्षित भूतल पर लाया जा सका. अंतरिक्ष में जाने वाले वे प्रथम मानव थे. (सात वर्ष बाद एक हवाई दुर्घटना में उनका निधन हो गया)
जौन एच. ग्लेन प्रथम अमरीकी अंतरिक्ष यात्री थे, जिन्हें २० फरवरी १९६२ को भेजा गया था. उन्होंने भूतल पर सुरक्षित लौटने से पहले तीन बार पृथ्वी की परिक्रमा की.
आने वाले वर्षों में संयुक्त राष्ट्र व सोविअत संघ दोनों ने ही अत्यंत व्यापक उपग्रह धरती की कक्षा में स्थापित किये, जिन में मानव सवार हो सकते थे. ऐसे उपग्रह थे जो दो, या तीन व्यक्तियों को ले जा सकते थे. १६ जून १९६३ में भेजे गए एक रूसी उपग्रह में एक महिला सवार थीं.
मानव अंतरिक्ष में और अधिक देर तक रहा. पहले कुछ घंटे, फिर कुछ दिन व फिर कुछ सप्ताह. १९७५ में तीन अमरीकी अंतरिक्ष यात्री 'स्कायलैब' (आकाश प्रयोगशाला) नामक अंतरिक्ष में स्थित एल स्टेशन पर ३ मॉस तक रहे. तत्पश्चात वे धरती पर लौट आये.
१९६० के दशक में उपग्रह रॉकेट यानों जैसे होने लगे. उन्हें केवल धरती की कक्षा में स्थापित नहीं किया जाता था. उन पर सवार मानव उन्हें चला सकते थे. दो उपग्रहों को जोड़ा जा सकता था व लोग एक से दूसरे में आ–जा सकते थे. वे अंतरिक्ष में पहनने योग्य वस्त्रों में अंतरिक्ष भ्रमण करने के लिए यान से बाहर निकल कर टहल सकते थे व तत्पश्चात वापस लौट सकते थे.
इस प्रकार के प्रयोगों में अमरीकी सोविअत संघ से अधिक से अधिक बढ़त लेने लगा. 'अपोलो' रॉकेटों के प्रयोग से वे १९७० से पहले चन्द्रमा पर पहुँचने की योजना बनाने लगे. ये चेष्ठा दुर्घटना–रहित आगे नहीं बढ़ी. २७ जनवरी १९६७ को, तीन अमरीकी अंतरिक्ष यात्री धरती पर अपोलो कैप्सूल पर किये जा रहे एक प्रयोग में मारे गए. जब तक रॉकेटों की रूपरेखा को आग के खतरे से बचाए जाने के प्रयास जारी रहे, चन्द्रमा पर जाने के प्रयासों को विलंबित कर दिया गया.
रूसियों को भी दुर्घटना का सामना करना पड़ा. अप्रैल १९६७ को, धरती पर लौटते एक अंतरिक्ष यान में सवार एक रूसी अंतरिक्ष यात्री कि मृत्यु हो गयी. किन्तु अमरीकी प्रयास बंद नहीं हुए थे. दिसंबर १९६८ में एक अपोलो रॉकेट चन्द्रमा तक गया, उसकी सतह से ११२ कि.मी. की ऊंचाई से १० बार उसकी परिक्रमा कर, सुरक्षित धरती पर लौट आया. एनी कई प्रयास भी किये गए, और फिर जुलाई १९६९ में अपोलो–II नामक अंतरिक्ष यान तीन यात्रियों सहित चन्द्रमा पर भेजा गया. इनमें से एक यात्री चन्द्रमा की कक्षा में ही रहा, व एनी दो यान के एक हिस्से सहित उसकी सतह पर उतरे. २० जुलाई १९६९ को नील आर्मस्ट्रोंग किसी और विश्व की सतह पर पग धरने वाले प्रथम मानव बन गए. जैसे ही उनके पैर ने चन्द्रमा को छूआ, वो बोले, "ये मानव के लिए एक छोटा–सा कदम है, व मानवता के लिए एक छलांग".
उस महान दिन के बाद पांच एनी अपोलो यान चन्द्रमा की सतह पर जा चुके हैं. प्रत्येक खोज व प्रयोग करता हुआ पिछले से अधिक देर तक चन्द्रमा पर रहा. तत्पश्चात सभी अपने यात्रियों सहित चन्द्रमा के पत्थर लेकर सुरक्षित धरती पर लौट आया. सोविअत संघ ने अभी तक चन्द्रमा पर मानव नहीं भेजे, किन्तु उन्होंने कुछ स्वचालित उपकरण भेजे जो चन्द्रमा के पत्थर लेकर लौटे. उन्होंने चन्द्रमा पर स्वचालित गाड़ियाँ भी भेजीं जो कई सप्ताह तक चलती रहीं व जानकारी भेजती रहीं. ऐसा प्रतीत होता है की दिसंबर १९७२ में समाप्त हुए अंतिम अपोलो अभियान के पश्चात, संयुक्त राष्ट्र में चन्द्रमा के प्रति उत्तेजना कुछ कम हो गयी है. किसी और को चन्द्रमा पर भेजने की कोई योजना नहीं है, अपितु एनी अंतरिक्ष अभियान जारी हैं.
तो क्या इसका अर्थ ये है कि अब मानव कभी अंतरिक्ष में नहीं जाएगा?
शायद नहीं. १९४ में प्रिंसटन के गेरार्ड पी. ओनील ने सुझाया था की मानव को अंतरिक्ष में नगर बसाने चाहियें. वे चन्द्रमा पर खनन स्टेशन स्थापित कर उसके पदार्थों से शीशे अथवा धातु के सिलेंडर, गेनादाकार अथवा छालेनुमा वस्तुएं चन्द्रमा की कक्षा में ही बना सकते हैं. इन नगरों में हज़ारों, अथवा, लाखों लोग रह सकेंगे.
ये नगरवासी ऐसे बढे उपकरण बना सकते हैं जो सूर्य की ऊर्जा एकत्रित कर धरती पर भेज सके. इस प्रकार, सारा तेल व कोयला भण्डार समाप्त हो जाने पर भी धरती बच सकती है.
क्या हम ऐसा करेंगे? कुछ लोग ऐसा नहीं मानते. उनकी मान्यता है कि अंतरिक्ष में नगर बसा कर उनमें रहने का विचार अविश्वसनीय है. किन्तु, कुछ ही समय पूर्व, लोगों की मान्यता थी कि चन्द्रमा तक पहुच कर उस पर चलना भी अविश्वसनीय है.
भविष्य में अंतरिक्ष अभियानों की सर्वाधिक आशापूर्ण किरण अमरीकी 'शटल' अभियान है. २९ दिसंबर १९० को 'कोलंबिया' नामक प्रथम शटल, सुरक्षित रूप से छोड़ा गया, और धरती के कई चक्कर लगा कर लौट आया. पहली बार कोई अंतरिक्ष यान सकुशल पृथ्वी पर लौटा, हवाई जहाज़ की तरह भूतल पर उतरा, व दोबारा प्रयोग में लाया जा सकेगा. ये व भावी शटल उपग्रहों को अंतरिक्ष में ले जा सकेंगे. ये उनके भागों को भी कक्षा में छोड़ कर बाकी के भाग लेने लौट सकेंगे. तत्पश्चात इंजीनिअरों को धरती कि कक्षा में ले जाकर इन भागों को जोड़कर ऊर्जा–उत्पादन गृह, प्रयोगशालाएँ, कारखाने व लोगों के रहने के लिए नगरों का निर्माण किया जा सकेगा.

शायद अंतरिक्ष में मानव की यात्रा अभी आरम्भ हो रही है.

********** ********** **********